

[2009] 13 (एडीडीएल.) एस. सी. आर 1116

धनपाल

बनाम

लोक अभियोजक, मद्रास द्वारा राज्य

(2002 की आपराधिक अपील संख्या 987)

1 सितंबर, 2009

[दलवीर भंडारी एवं हरजीत सिंह बेदी, न्यायमूर्तिगण]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 378 - दोषमुक्त होने के विरुद्ध अपील- अपीलीय न्यायालय की हस्तक्षेप करने की शक्ति - अभिनिर्धारित: अपीलीय न्यायालय मुकदमे के आदेश में केवल 'अत्यंत ठोस एवं बाध्यकारी कारणों' के लिए ही हस्तक्षेप कर सकता है- यह अभिलेख पर मौजूद सभी साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन कर सकता है एवं विचारण न्यायालय के निष्कर्ष की समीक्षा कर सकता है - यदि दो उचित या संभावित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं - एक दोषमुक्त करने के संबंध में, दूसरा दोषसिद्धि के संबंध में - तो उच्च न्यायालयों/अपीलीय न्यायालयों को अभियुक्त के पक्ष में आदेश पारित करना होगा- तथ्यों के आधार पर, विचारण न्यायालय द्वारा धारा 307 एवं 302 के तहत दंडनीय अपराधों से अभियुक्त को दोषमुक्त करने का निर्णय एक संभावित या तर्कसंगत दृष्टिकोण था - उच्च न्यायालय को इसे अपने स्वयं के तर्कसंगत दृष्टिकोण से प्रतिस्थापित नहीं करना चाहिए - उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को धारा 302 एवं 34 के तहत दोषी ठहराने का आदेश अपास्त किया जाता है - दंड संहिता, 1860 - धारा 302, 307 एवं 34।

विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता एवं अन्य आरोपियों को धारा 307 एवं 302 के तहत दंडनीय अपराधों से दोषमुक्त कर दिया। उच्च न्यायालय ने अभियुक्त सं. 1, 2 एवं 4 को धारा 302 एवं 34 के तहत दोषी ठहराया एवं आजीवन कारावास की सजा सुनाई,

जबकि अभियुक्त सं. 3 को धारा 307 के तहत दोषी ठहराया एवं पांच वर्ष की सजा सुनाई। अपील लंबित रहने के दौरान अभियुक्त संख्या 2 से 4 की मृत्यु हो गई। इसलिए, अपीलकर्ता-अभियुक्त सं. 1 द्वारा यह अपील दायर की गई है।

अपील को स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: 1. जब तक दोषी सिद्ध न हो जाए, अभियुक्त को निर्दोष माना जाता है। जब अभियुक्त विचारण न्यायालय के समक्ष था, तब भी उसे यही मान्यता प्राप्त थी। विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए जाने से उसकी निर्दोषता की मान्यता एवं मजबूत होती है। सबूतों की समीक्षा करने की शक्ति व्यापक है एवं अपीलीय न्यायालय अभिलेख में मौजूद सभी सबूतों का पुनर्मूल्यांकन कर सकता है। यह विचारण न्यायालय के निष्कर्ष की समीक्षा तथ्यों एवं कानून दोनों के संदर्भ में कर सकता है, लेकिन अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय के निर्णय को उचित महत्व एवं विचार देना चाहिए। अपीलीय न्यायालय को हमेशा यह ध्यान में रखना चाहिए कि विचारण न्यायालय को साक्षियों के व्यवहार को देखने का विशेष लाभ प्राप्त था। विचारण न्यायालय साक्षियों की विश्वसनीयता का बेहतर मूल्यांकन कर सकती है। अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायालय के दोषमुक्ति के निर्णय को केवल तभी अपास्त कर सकता है या उसमें कोई बदलाव कर सकता है जब उसके पास ऐसा करने के लिए 'बहुत ठोस एवं बाध्यकारी कारण' हों। यदि दो तर्कसंगत या संभावित निष्कर्ष निकाले जा सकें - एक दोषमुक्ति की ओर ले जाए, दूसरा दोषसिद्धि की ओर - तो उच्च न्यायालयों/अपीलीय न्यायालयों को अभियुक्त के पक्ष में निर्णय सुनाना होगा। [कंडिका 41] [1137-ए-एफ]

शिव स्वरूप बनाम सम्राट एआईआर 1934 प्रिवी काउंसिल 227; सूरजपाल सिंह एवं अन्य बनाम राज्य एआईआर 1952 एससी 52; तुलसीराम कानू बनाम राज्य एआईआर 1954 एससी 1; एटली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एआईआर 1955 एससी 807;

बलबीर सिंह बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1957 एससी 216; एम.जी. अग्रवाल बनाम महाराष्ट्र राज्य एआईआर 1963 एससी 200; खेदु मोहटन एवं अन्य बनाम बिहार राज्य (1970) 2 एससीसी 450; बिशन सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य (1974) 3 एससीसी 288; के. गोपाल रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1979) 1 एससीसी (1979) 355; तोता सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य (1987) 2 एससीसी 529; सांबासिवन एवं अन्य बनाम केरल राज्य (1998) 5 एससीसी 412; भगवान सिंह एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2002) 4 एससीसी 85; हरिजन तिरुपाला एवं अन्य बनाम लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद (2002) 6 एससीसी 470; राजस्थान राज्य बनाम राजा राम (2003) 8 एससीसी 180; गोवा राज्य बनाम संजय ठकरान एवं अन्य (2007) 3 एससीसी 755; चंद्रप्पा एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (2007) 4 एससीसी 415; घुरे लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2008) 10 एससीसी 450 पर अवलंबन।

2.1. उच्च न्यायालय द्वारा साक्ष्य का भार अभियुक्त पर नहीं डाला जा सकता था। साक्ष्य अधिनियम के मूलभूत सिद्धांतों के अनुसार, अभियोजन पक्ष को अपना वाद स्वयं साबित करना होता है। उच्च न्यायालय द्वारा अभियोजन पक्ष का एक अलग और नया संस्करण गढ़ना उचित नहीं था। न्यायालय का यह कर्तव्य और दायित्व है कि वह साक्ष्य को यथावत देखे। साक्ष्य में किसी प्रकार का सुधार या पुनर्लेखन अनुमेय नहीं है। इस मामले में, अभियोजन साक्षी 1- प्रत्यक्षदर्शी और शिकायतकर्ता पक्षद्रोही हो गए हैं और अभियोजन साक्षी 3 एक अन्य प्रत्यक्षदर्शी ने भी अभियोजन पक्ष के वाद का समर्थन नहीं किया है। अभियोजन साक्षी 2 की गवाही भी पूरी तरह विश्वसनीय नहीं है। [कंडिका 20 और 21] [1124-एच; 1125-ए-बी]

2.2. संपूर्ण साक्ष्य, अभिलेख पर मौजूद दस्तावेज़ और विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त करने के लिए दिए गए तर्क तथा साथ ही उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्त करने के निर्णय को पलटने के लिए दिए गए तर्क पर सावधानीपूर्वक विचार करने पर, विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण निश्चित रूप से संभव या तर्कसंगत दृष्टिकोण है। यदि विचारण न्यायालय का दृष्टिकोण संभव या तर्कसंगत है, तो उच्च न्यायालय को उसे अपने स्वयं के संभावित दृष्टिकोण से प्रतिस्थापित नहीं करना चाहिए। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में विचारण न्यायालय के सुविचारित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करने का औचित्य नहीं ठहराया और उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किया जाता है। [कंडिका 22, 42 और 43] [1125-सी-डी; 1137-जी-एच; 1138-ए-सी]

नजीर संदर्भ

एआईआर 1934 प्रिवी काउंसिल 227	अवलंबन	कंडिका 23
एआईआर 1952 एससी 52	अवलंबन	कंडिका 24
एआईआर 1954 एससी 1	अवलंबन	कंडिका 26
एआईआर 1955 एससी 807	अवलंबन	कंडिका 27
एआईआर 1957 एससी 216	अवलंबन	कंडिका 28
एआईआर 1963 एससी 200	अवलंबन	कंडिका 29
(1970) 2 एससीसी 450	अवलंबन	कंडिका 30
(1974) 3 एससीसी 288	अवलंबन	कंडिका 31
(1979) 1 एससीसी 355	अवलंबन	कंडिका 32
(1987) 2 एससीसी 529	अवलंबन	कंडिका 33
(1998) 5 एससीसी 412	अवलंबन	कंडिका 34
(2002) 4 एससीसी 85	अवलंबन	कंडिका 35
(2002) 6 एससीसी 470	अवलंबन	कंडिका 36
(2003) 8 एससीसी 180	अवलंबन	कंडिका 37
(2007) 7 एससीसी 755	अवलंबन	कंडिका 38
(2007) 4 एससीसी 415	अवलंबन	कंडिका 39
(2008) 10 एससीसी 450	अवलंबन	कंडिका 40

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: वर्ष 2002 का आपराधिक अपील संख्या 987

मद्रास उच्च न्यायालय के आपराधिक अपील संख्या 217/1993 में दिनांक 11.6.2002 के निर्णय एवं आदेश से।

अपीलकर्ताओं के लिए- अल्ताफ अहमद, एम.ए. चिन्नासामी, के.के. कुमार और प्रीतम

उत्तरदाताओं के लिए- आर. नेदुमारन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दलवीर भंडारी द्वारा सुनाया गया

1. यह अपील सर्वोच्च न्यायालय (आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार का विस्तार) अधिनियम, 1970 की धारा 2(ए) के तहत मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक अपील संख्या 217/1993 में दिनांक 11.6.2002 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध दायर की गई है।

2. इस अपील का निपटारा करने के लिए आवश्यक संक्षिप्त तथ्य निम्नलिखित हैं: इस मामले में अपीलकर्ता और अन्य आरोपियों को तंजावुर के सत्र न्यायाधीश द्वारा सत्र वाद संख्या 36/1989 में भारतीय दंड संहिता (संक्षेप में 'भा.दं.सं.') की धारा 307 और 302 के साथ धारा 34 के तहत दंडनीय अपराधों से दोषमुक्त कर दिया गया था।

3. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में सत्र न्यायाधीश द्वारा दिए गए दोषमुक्ति के निर्णय को अपास्त कर दिया और राज्य द्वारा दायर अपील को स्वीकार कर लिया। उच्च न्यायालय ने अभियुक्त संख्या 1, 2 और 4 को धारा 302 के साथ धारा 34 भा.दं.सं. के तहत दंडनीय अपराध का दोषी पाया और उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई। और अभियुक्त संख्या 3 को धारा 307 भा.दं.सं. के तहत दंडनीय अपराध का दोषी पाया और उन्हें पांच वर्ष की सजा सुनाई। यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि अभियुक्त उत्तरदाता संख्या 2 से 4 की उच्च न्यायालय में अपील लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो

गई। इस वाद में एकमात्र जीवित अपीलकर्ता (जो उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्त संख्या 1 था) ने उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश के विरुद्ध यह अपील दायर की है।

4. अभियोजन पक्ष के अनुसार घटना का कारण यह है कि अभियोजन साक्षी 1 की बहन अपीलकर्ता के साथ रहती थी और घटना से छह महीने पहले उसकी मृत्यु हो गई थी। घर की अन्य महिलाओं ने अपीलकर्ता और उसके रिश्तेदारों को गाली दी। अपीलकर्ता ने यह बात अभियोजन साक्षी 1 सेबस्तिराज को बताई। अभियोजन साक्षी 1 ने उसे यह कहकर सांत्वना दी कि वे उसे केवल निराशा के कारण गाली दे रही थीं और कुछ समय बाद सब ठीक हो जाएगा।

5. अपीलकर्ता और अन्य अभियुक्त तथा मृतक थंजावुर की बर्मा कॉलोनी के निवासी थे। अभियोजन साक्षी 1 सेबस्तिराज और अभियोजन साक्षी 2 करुणानिधि मृतक जंबू के मित्र थे। 8 मई, 1988 को दोपहर लगभग 12 बजे जब अभियोजन साक्षी 2 रेलवे गेट के पास जंबू से बात कर रहा था, तब अभियोजन साक्षी 1 सेबस्तिराज ने जंबू को सेबस्तिरार मंदिर चलने का निमंत्रण दिया। जंबू ने अभियोजन साक्षी 2 करुणानिधि से अपने साथ चलने का अनुरोध किया। वे सभी मंदिर गए और दोपहर 2 बजे पूजा-अर्चना और भोजन करने के बाद बाहर आए। द्वार के बाहर उन्होंने अपीलकर्ता धनपाल और अन्य अभियुक्तों को देखा। धनपाल चिल्लाया, "सेबस्तिराज आ गया है, उसे काट डालो।" मंदिर के सामने मौजूद भीड़ तितर-बितर हो गई और लोग भागने लगे। अभियुक्त संख्या 3 लोगनाथन ने अभियोजन साक्षी 1 सेबस्तिराज पर एक अरुवल फेंका। चोट लगने के बाद अभियोजन साक्षी 1 सेबस्तिराज किसी तरह भागने में कामयाब रहा। इसके बाद अभियुक्त सं. 2 शेखर ने जंबू के सिर और पीठ पर वार करके उसे घायल कर दिया। धनपाल ने जंबू की छाती पर चाकू से वार किया। अभियुक्त सं. 4 सोमू ने जंबू की पीठ पर चाकू से

वार किया। इसके बाद सभी अभियुक्त अपने हथियारों के साथ फरार हो गए। मृतक पर हमला बर्मा कॉलोनी की 19 वीं गली में एक बिजली के खंभे के पास सुब्रमणिया थेवर के घर के पास हुआ था। अभियोजन साक्षी 3 सेल्वराज ने 8 मई 1988 को दोपहर लगभग 2 बजे मृतक को घटनास्थल पर मृत पड़ा देखा।

6. अभियोजन साक्षी 1 सेबस्तराज, जो अभियुक्त सं. 3 के हाथों चोट लगने के बाद भाग गया था, तंजावुर दक्षिण थाना गया और 8.5.1988 को शाम लगभग 4.00 बजे प्रदर्श प्रतिवेदन दर्ज कराई। यह प्रतिवेदन अभियोजन साक्षी 4, तत्कालीन उप निरीक्षक (पुलिस) ने प्राप्त की, जिन्होंने आपराधिक संख्या 311/88 में धारा 302 और 307 भा.दं.सं. के तहत दंडनीय अपराधों के लिए मामला दर्ज किया और प्रदर्श 3 मुद्रित प्रथम सूचना प्रतिवेदन तैयार करके न्यायालय को भेजी।

7. पुलिस निरीक्षक अभियोजन साक्षी 10 ने जांच शुरू की, शाम लगभग 6.30 बजे अपराध स्थल पर गए और पर्याप्त रोशनी न होने के कारण उन्होंने पूछताछ नहीं की, बल्कि मृतक के शरीर की सुरक्षा के लिए दो कांस्टेबल तैनात करने के बाद अभियुक्त की तलाश में गए। वह वहीं ठहरे और 9 मई 1988 को सुबह लगभग 6 बजे पंचायतदारों की उपस्थिति में उन्होंने पूछताछ शुरू की और सुबह 8 बजे तक उसे पूरा कर लिया तथा प्रदर्श 16 पूछताछ प्रतिवेदन तैयार की। उन्होंने अभियोजन साक्षी 1 से 3 और अन्य लोगों से पूछताछ की। उन्होंने प्रदर्श 4 अवलोकन महजर भी तैयार किया और प्रदर्श 17 का एक स्थूल रेखाचित्र बनाया। उन्होंने सामग्री जब्त की। उसने प्रदर्श 5 महजर के तहत मृतक की भौतिक वस्तुएं (संक्षेप में 'एम.ओ.') जब्त कीं, जिनमें सामग्री 1 रक्त से सनी मिट्टी; सामग्री 2 नमूना मिट्टी और सामग्री 3 मृतक की कमीज शामिल हैं। उस दिन दोपहर लगभग 3 बजे वह मृतक के घर गया और जब वह अभियुक्त की तलाश कर रहा था, तो उसने तीसरे अभियुक्त के पिछवाड़े में हथियार संख्या 4, 5, 6 और 7 देखीं और उन्हें

प्रदर्श 6 महजर के तहत जब्त कर लिया। पूछताछ के बाद, उसने शव को शवपरीक्षण के लिए भेज दिया।

8. अभियोजन साक्षी 8 डॉ. विजयलक्ष्मी, न्याय आयुर्विज्ञान शास्त्र की शिक्षिका, राजकीय चिकित्सा महाविद्यालय, तंजावुर ने मृतक का शव 9.5.1988 को सुबह लगभग 10 बजे प्राप्त किया और शवपरीक्षण शुरू किया। उन्होंने शरीर पर 21 चोटें पाईं और उनके अनुसार, मृत्यु का कारण चोटों के कारण रक्तस्राव और सदमा था।

9. अपीलकर्ता ने न्यायिक दंडाधिकारी, थिरुवैयारु के समक्ष 17.5.1988 को आत्मसमर्पण किया। जांच अधिकारी अभियोजन साक्षी 10 ने जांच के बाद अंतिम प्रतिवेदन दी जिसमें अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया।

10. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य प्रस्तुत करने के बाद, विचारण न्यायाधीश ने अभियुक्तों से धारा 313 दं.प्र.सं के तहत उनके विरुद्ध साक्ष्यों में प्रस्तुत अपराधबोधकारी परिस्थितियों के संदर्भ में पूछताछ की और उन्होंने अपराध से इनकार किया। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने मौखिक और दस्तावेजी दोनों प्रकार के दर्ज साक्ष्यों पर विचार करते हुए अभियुक्तों को दोषमुक्त करने का निर्णय लिया।

11. उच्च न्यायालय ने साक्ष्यों का पुनः मूल्यांकन करने पर अपीलकर्ता और अन्य अभियुक्तों को दोषी ठहराया। उच्च न्यायालय के अनुसार, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों को ठीक से व्यवस्थित और मूल्यांकन नहीं किया है।

12. पुनरावृत्ति से बचने के लिए उच्च न्यायालय के प्रासंगिक निष्कर्षों पर निर्णय के बाद के भाग में चर्चा की जाएगी, इसलिए हम इस समय उन्हें पुनः प्रस्तुत करना उचित नहीं समझते हैं।

13. महत्वपूर्ण साक्ष्यों का संक्षिप्त विश्लेषण इस प्रकार है:

- (i) अभियोजन साक्षी 1, जिसे प्रत्यक्षदर्शी माना जाता है और जिसने प्रथम सूचना प्रतिवेदन भी दर्ज कराई है, मुकर गया है।
- (ii) अभियोजन साक्षी 2 के साक्ष्य ने गवाही दी है कि अभियुक्त सं. 2 शेखर ने अन्य आरोपियों को जांबू के सिर और पीठ पर अरुवल से वार करके उसकी हत्या करने के लिए उकसाया था। अभियुक्त सं. 1 धनपाल (अपीलकर्ता) ने जांबू की छाती पर बार-बार वार किया। अभियुक्त सं. 4 सोमू ने भी जांबू की पीठ पर सुलुक्की से वार किया।

14. विद्वान सत्र न्यायाधीश का निष्कर्ष यह है कि अभियोजन साक्षी 2 के साक्ष्य की पुष्टि किसी अन्य मान्य साक्ष्य से नहीं हुई है। विचारण न्यायालय ने एक अन्य प्रत्यक्षदर्शी अभियोजन साक्षी 3 के साक्ष्य को भी खारिज कर दिया। विचारण न्यायालय के अनुसार, चिकित्सा साक्ष्य भी अभियोजन पक्ष के वाद में सहायक नहीं है।

15. अभियोजन साक्षी 2 के अनुसार, घटना मृतक और साक्षियों के मंदिर आने के बाद घटी और पूजा-अर्चना और भोजन करने के बाद वे दोपहर 2 बजे बाहर निकले। अतः मृतक के पेट में भोजन के कण अवश्य ही मौजूद रहे होंगे। जबकि मृतक के शव का शवपरीक्षण करने वाले चिकित्सक के अनुसार, शव खाली था। इससे अभियोजन साक्षी 2 की गवाही की सत्यता पर गंभीर संदेह उत्पन्न होता है। विचारण न्यायालय ने एक अन्य प्रत्यक्षदर्शी अभियोजन साक्षी 3 की गवाही को भी खारिज कर दिया।

16. अभियोजन साक्षी 10, पुलिस निरीक्षक ने जांच शुरू की और शाम 6.30 बजे घटनास्थल पर गए तथा पर्याप्त रोशनी न होने के कारण उन्होंने पूछताछ नहीं की, बल्कि मृतक के शव की सुरक्षा के लिए दो कांस्टेबल तैनात करने के बाद अभियुक्त की तलाश में गए।

17. विचारण न्यायालय की राय थी कि चिकित्सकीय साक्ष्य भी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं करते। विचारण न्यायालय का मानना था कि ऐसे साक्ष्यों के आधार पर दोषसिद्धि दर्ज करना सुरक्षित नहीं होगा और उसने अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया।

18. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में अभियोजन साक्षी 2 की गवाही को पूरी तरह से नया आयाम दिया है और विचारण न्यायालय के बयान को यह कहते हुए खारिज कर दिया है कि, "अभियोजन साक्षी 2 के अनुसार, दोपहर लगभग 12:00 बजे वे (मृतक और उसके मित्र) मंदिर गए और फिर दोपहर लगभग 2:00 बजे बाहर आए। इस बीच, इस बात का कोई सबूत नहीं है कि उन्होंने कब भोजन किया था। हालांकि उनके अनुसार वे दोपहर 2 बजे बाहर आए थे, लेकिन उनका कहना है कि कुछ समय बाद जब वे बाहर खड़े थे तो शोर हुआ और अभियुक्त सं. 1 ने अन्य आरोपियों को अभियोजन साक्षी 1 सेबस्तिराज को काटने (मारने) के लिए उकसाया। समय का बोध व्यक्ति-दर-व्यक्ति भिन्न हो सकता है, जब तक कि किसी ने उस समय अपनी कलाई घड़ी न देखी हो।"

19. उच्च न्यायालय के महत्वपूर्ण निष्कर्ष निम्नलिखित हैं:-

- I. महज इसलिए कि अभियोजन साक्षी 1 पक्षद्रोही हो गया, यह नहीं कहा जा सकता कि अभियोजन साक्षी 1 की हत्या का प्रयास करने वाले अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया जाना चाहिए।
- II. इस बात का कोई पुख्ता सबूत नहीं है कि मृतक ने कोई भोजन किया था। जब मित्र मंदिर गए हों और मंदिर में प्रसाद या भोजन दिया गया हो, तो जब तक इस बात का कोई पुख्ता सबूत न हो कि मृतक ने किसी विशेष प्रकार का भोजन या विशेष मात्रा में

भोजन किया था, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि मृतक को भोजन करना चाहिए था।

III. यह ऐसा मामला नहीं है जहां मृत्यु रात के समय हुई हो या अपराध होने के काफी समय बाद शव मिला हो, जिसके कारण न्यायालयों को मृत्यु का समय निर्धारित करने के लिए चिकित्सा साक्ष्य पर निर्भर रहना पड़े।

20. विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय के निर्णय विरोधाभासी हैं, इसलिए हमने संपूर्ण साक्ष्य का नए सिरे से सावधानीपूर्वक अध्ययन किया है। हमारे विचार में, उच्च न्यायालय अभियुक्त पर सबूत का बोझ नहीं डाल सकता था।

21. उच्च न्यायालय द्वारा अभियोजन पक्ष का एक अलग और नया संस्करण गढ़ना उचित नहीं था। न्यायालय का यह कर्तव्य और दायित्व है कि वह साक्ष्य को यथावत देखे। साक्ष्य में किसी प्रकार का सुधार या पुनर्लेखन अनुमेय नहीं है। इस मामले में, अभियोजन साक्षी 1 पक्षद्रोही हो गया था और अभियोजन साक्षी 3 ने भी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया। अभियोजन साक्षी 2 की गवाही भी पूरी तरह से विश्वसनीय नहीं है।

22. विचारण न्यायालय के निर्णय का उचित मूल्यांकन करने पर, हम मानते हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण निश्चित रूप से एक संभावित या एक तर्कसंगत दृष्टिकोण था। यह एक स्थापित कानूनी स्थिति है कि जब विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक संभावित दृष्टिकोण है, तो उच्च न्यायालय द्वारा केवल अपने कारणों को बदलकर दोषमुक्त करने के निर्णय को अपास्त नहीं किया जा सकता है। हमारे विचार में, उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय स्थापित कानूनी स्थिति के विपरीत है और इसे अपास्त किया जाना चाहिए।

23. इस विवाद पर विस्तार से विचार करने वाला पूर्व मामला *शिव स्वरूप बनाम राजा सम्राट*, एआईआर 1934 प्रिवी काउंसिल 227 है। इस मामले में, दोषमुक्त किए जाने के विरुद्ध अपील पर विचार करते समय अपीलीय न्यायालय के दायरे, शक्ति और अधिकार क्षेत्र पर प्रिवी काउंसिल द्वारा व्यापक रूप से विचार किया गया है। लॉर्ड रसेल ने निर्णय लिखते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की है: (पृष्ठ 230 पर):

“...उच्च न्यायालय को ऐसे मामलों को हमेशा उचित महत्व और विचार देना चाहिए और देगा, जैसे कि (1) साक्षियों की विश्वसनीयता के संबंध में विचारण न्यायाधीश के विचार, (2) अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषता की धारणा, एक ऐसी धारणा जो निश्चित रूप से इस तथ्य से कमजोर नहीं होती कि उसे मुकदमे में दोषमुक्त कर दिया गया है, (3) किसी भी संदेह का लाभ पाने का अभियुक्त का अधिकार, और (4) किसी न्यायाधीश द्वारा दिए गए तथ्य संबंधी निर्णय को पलटने में अपीलीय न्यायालय की धीमी गति उस न्यायाधीश द्वारा दिया गया निर्णय जिसे साक्षियों को देखने का लाभ प्राप्त था...”

इस मामले में संक्षेप में प्रतिपादित कानून का इस न्यायालय द्वारा बाद के निर्णयों में लगातार पालन किया गया है।

24. इस न्यायालय ने *सूरजपाल सिंह और अन्य बनाम राज्य*, एआईआर 1952 एससी 52 के मामले में उच्च न्यायालय की शक्तियों को स्पष्ट किया है। इस न्यायालय ने उच्च न्यायालयों को यह भी याद दिलाया है कि विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए जाने के विरुद्ध अपीलों पर विचार करते समय वे सुस्थापित मानदंडों का पालन करें। न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन किया:

“यह सर्वविदित है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 417 के तहत अपील में, उच्च न्यायालय को उस साक्ष्य की समीक्षा करने का पूर्ण अधिकार है जिस पर दोषमुक्त

करने का आदेश आधारित था, लेकिन यह भी सर्वविदित है कि विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त किए जाने से उसकी निर्दोषता की धारणा और भी मजबूत हो जाती है, और विचारण न्यायालय के निर्णय, जिसे साक्षियों को देखने और उनके साक्ष्य सुनने का लाभ मिला था, को केवल बहुत ठोस और बाध्यकारी कारणों से ही पलटा जा सकता है।”

25. इस न्यायालय ने सिद्धांतों को दोहराते हुए कहा कि अभियुक्त की निर्दोषता की धारणा को 'दोषमुक्ति के आदेश' द्वारा बल मिलता है। अपीलीय न्यायालय केवल बहुत ठोस और बाध्यकारी कारणों से ही हस्तक्षेप कर सकता था।

26. *तुलसीराम कानू बनाम राज्य*, एआईआर 1954 एससी 1 के मामले में, इस न्यायालय ने स्पष्ट किया कि अपीलीय न्यायालय केवल तभी दोषमुक्ति के निर्णय को पलटने में न्यायसंगत होगा जब कोई महत्वपूर्ण प्रश्न और बाध्यकारी कारण मौजूद हों। इस मामले में, न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपीलीय न्यायालय के दृष्टिकोण का वर्णन करने के लिए एक अलग वाक्यांश का प्रयोग किया। वहां, सत्र न्यायालय ने कहा कि उसके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर अभियुक्त के अपराध के संबंध में स्पष्ट रूप से उचित संदेह था। मुख्य न्यायाधीश कानिया ने टिप्पणी की कि अपील न्यायालय द्वारा किसी भिन्न निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले ऐसे उचित संदेह को दूर करने के लिए ठोस और पर्याप्त रूप से तर्कसंगत कारणों की आवश्यकता होती है।

27. *एटली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, एआईआर 1955 एससी 807 (पृष्ठ 809-10 कंडिका 5) में भी इसी सिद्धांत का पालन किया गया है, जिसमें न्यायालय ने कहा:

इस न्यायालय ने यह निर्धारित किया है कि उच्च न्यायालय को दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील पर संपूर्ण साक्ष्य की समीक्षा करने और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर पहुंचने का अधिकार है, बेशक, इस सुस्थापित नियम को ध्यान में रखते हुए कि

अभियुक्त की निर्दोषता की धारणा विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के निर्णय से कमजोर नहीं होती बल्कि मजबूत होती है, क्योंकि विचारण न्यायालय को उन साक्षियों के व्यवहार को देखने का लाभ प्राप्त था जिनके साक्ष्य उसकी उपस्थिति में दर्ज किए गए थे।

यह भी सर्वविदित है कि दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील में साक्ष्य के मूल्यांकन के लिए अपील न्यायालय के पास उतनी ही व्यापक शक्तियाँ होती हैं जितनी कि दोषसिद्धि के आदेश के विरुद्ध अपील में, बशर्ते कि अभियुक्त व्यक्ति को विचारण न्यायालय में प्राप्त निर्दोषता की धारणा अपीलीय चरण तक भी बनी रहती है और अपीलीय न्यायालय को दोषमुक्ति का आदेश देने वाली विचारण न्यायालय की राय को उचित महत्व देना चाहिए।

28. *बलबीर सिंह बनाम पंजाब राज्य*, एआईआर 1957 एससी 216 में, इस न्यायालय को फिर से कानून के उसी प्रस्ताव की जांच करने का अवसर मिला। न्यायालय ने (पृष्ठ 222 पर) निम्नलिखित टिप्पणी की।

“यह अब सर्वविदित है कि यद्यपि उच्च न्यायालय को दोषमुक्त करने के आदेश के आधार पर साक्ष्यों की समीक्षा करने की पूर्ण शक्ति है, यह भी सर्वविदित है कि अभियुक्त की निर्दोषता की धारणा विचारण न्यायालय द्वारा उसे दोषमुक्त किए जाने से और अधिक मजबूत होती है और साक्षियों की विश्वसनीयता के संबंध में विचारण न्यायाधीश के विचारों को उचित महत्व और विचार दिया जाना चाहिए; और अपील न्यायालय द्वारा साक्षियों को देखने का लाभ प्राप्त न्यायाधीश द्वारा दिए गए तथ्य के निष्कर्ष को पलटने में लगने वाली धीमी गति को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए, और अपील न्यायालय के लिए विचारण न्यायालय के न्यायाधीश के

निष्कर्ष से भिन्न निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए ठोस और बाध्यकारी कारण होने चाहिए।”

29. इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने *एम.जी. अग्रवाल बनाम महाराष्ट्र राज्य* (एआईआर 1963 एससी 200) मामले में निम्नलिखित टिप्पणी की:

“इसमें कोई संदेह नहीं है कि खंड (क) द्वारा प्रदत्त शक्ति, जो दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील से संबंधित है, खंड (ख) द्वारा प्रदत्त शक्ति के समान व्यापक है, जो दोषसिद्धि के आदेश के विरुद्ध अपील से संबंधित है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि आपराधिक अपीलों से निपटने में उच्च न्यायालय की शक्तियां समान रूप से व्यापक हैं, चाहे विचाराधीन अपील दोषमुक्ति के विरुद्ध हो या दोषसिद्धि के विरुद्ध। यह प्रश्न का एक पहलू है। प्रश्न का दूसरा पहलू उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए जाने के आदेशों के विरुद्ध अपीलों से निपटने के दृष्टिकोण पर केंद्रित है। ऐसे अपीलों पर विचार करते समय, उच्च न्यायालय स्वाभाविक रूप से अभियुक्त व्यक्ति के पक्ष में निर्दोषता की धारणा को ध्यान में रखता है और इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकता कि उक्त धारणा विचारण न्यायालय द्वारा उसके पक्ष में पारित दोषमुक्ति के आदेश से और मजबूत होती है। इसलिए, इस तथ्य को कि अभियुक्त व्यक्ति उचित संदेह का लाभ पाने का हकदार है, उच्च न्यायालय के मन में हमेशा रहेगा जब वह मामले की खूबियों पर विचार करेगा। अपीलीय न्यायालय होने के नाते, उच्च न्यायालय आम तौर पर विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्ष को पलटने में धीमी गति से कार्य करता है, विशेष रूप से तब जब उक्त निष्कर्ष मौखिक साक्ष्य के मूल्यांकन पर आधारित होता है, क्योंकि विचारण न्यायालय को साक्ष्य देने वाले साक्षियों के व्यवहार को देखने का लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार, यद्यपि दोषमुक्ति के विरुद्ध

अपील पर विचार करने में उच्च न्यायालय की शक्तियाँ उतनी ही व्यापक हैं जितनी दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील पर विचार करने में होती हैं, फिर भी पूर्व श्रेणी की अपीलों पर विचार करते समय, उसका दृष्टिकोण निर्दोषता की धारणा से उत्पन्न सर्वोपरि विचार द्वारा निर्देशित होता है...

"पर्याप्त और बाध्यकारी कारणों" अभिव्यक्ति द्वारा सुझाए गए परीक्षण को एक ऐसे सूत्र के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए जिसे हर मामले में सख्ती से लागू किया जाना चाहिए, और इसलिए, यह आवश्यक नहीं है कि दोषमुक्त करने के निर्णय को पलटने से पहले, उच्च न्यायालय को उसमें दर्ज निष्कर्षों को अनिवार्य रूप से विकृत बताना चाहिए।

ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के विरुद्ध अपीलों में सर्वोच्च न्यायालय को स्वयं से यह प्रश्न पूछना होता है कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत सामग्री के आधार पर, उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचने में उचित था कि अपीलकर्ताओं के विरुद्ध अभियोजन पक्ष का मामला संदेह से परे सिद्ध हो गया था, और विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया विपरीत दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण था। इस प्रश्न का उत्तर देते समय, सर्वोच्च न्यायालय निस्संदेह साक्ष्यों की प्रमुख और व्यापक विशेषताओं पर विचार करेगा ताकि उच्च न्यायालय के निष्कर्षों के विरुद्ध अपीलकर्ताओं द्वारा उठाई गई शिकायत का आकलन किया जा सके।"

30. खेदु मोहटन और अन्य बनाम बिहार राज्य, (1970) 2 एससीसी 450 में, इस न्यायालय ने अपीलीय न्यायालय को इस संबंध में व्यापक दिशानिर्देश दिए कि वह कब उचित रूप से दोषमुक्त किए गए निर्णय को रद्द कर सकता है। न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

“3. यह सत्य है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 417 के तहत अपीलों में अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों पर विचार करने में उच्च न्यायालय की शक्तियां दोषसिद्धि के विरुद्ध अपीलों में उसकी शक्तियों के समान व्यापक हैं, लेकिन साथ ही न्यायालय को अभियुक्त व्यक्तियों की निर्दोषता की धारणा को भी ध्यान में रखना चाहिए, जो उनकी दोषमुक्त होने से कमजोर नहीं होती है। इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि अपीलीय न्यायाधीश ने उन्हें निर्दोष पाया था। जब तक उनके द्वारा निकाले गए निष्कर्ष स्पष्ट रूप से गलत न हों या कानून की गलत समझ पर आधारित न हों या उनके निर्णय से गंभीर अन्याय होने की संभावना न हो, उच्च न्यायालय को उनके निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने से बचना चाहिए। यदि उपस्थित साक्ष्यों के आधार पर दो तर्कसंगत निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, तो अभियुक्त को दोषमुक्त करने के पक्ष में दिए गए दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। उच्च न्यायालय द्वारा उपस्थित साक्ष्यों के संबंध में भिन्न दृष्टिकोण अपनाने का तथ्य दोषमुक्त करने के आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए पर्याप्त नहीं है।”

31. *बिशन सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य* (1974) 3 एससीसी 288 में, न्यायमूर्ति खन्ना ने न्यायालय की ओर से बोलते हुए कानूनी स्थिति प्रदान की:

“22. यह सर्वविदित है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 417 के अंतर्गत अपील में उच्च न्यायालय को उस साक्ष्य की व्यापक समीक्षा करने का पूर्ण अधिकार है जिस पर दोषमुक्त करने का आदेश आधारित था और इस निष्कर्ष पर पहुंचने का अधिकार है कि साक्ष्य के आधार पर दोषमुक्त करने के आदेश को रद्द किया जाना चाहिए। जब तक संहिता में स्पष्ट रूप से उल्लेख न किया गया हो, उस शक्ति पर

कोई सीमा नहीं लगाई जानी चाहिए, लेकिन संहिता द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते समय और तथ्यों पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले, उच्च न्यायालय को निम्नलिखित मामलों को उचित महत्व और विचार देना चाहिए: (1) साक्षियों की विश्वसनीयता के संबंध में परीक्षण न्यायाधीश के विचार; (2) अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषता की धारणा, एक धारणा जो निश्चित रूप से इस तथ्य से कमजोर नहीं होती कि उसे उसके मुकदमे में दोषमुक्त कर दिया गया है; (3) किसी भी संदेह का लाभ प्राप्त करने का अभियुक्त का अधिकार; और (4) साक्षियों को देखने का लाभ प्राप्त करने वाले न्यायाधीश द्वारा दिए गए तथ्य के निष्कर्ष को बदलने में अपीलीय न्यायालय की धीमी गति।”

32. के. गोपाल रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1979) 1 एससीसी 355 में न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की:

"9 यह हमारे आपराधिक न्यायशास्त्र के मूलभूत सिद्धांत से उत्पन्न होता है कि अभियुक्त किसी भी उचित संदेह का लाभ उठाने का हकदार है। यदि साक्ष्य के दो यथोचित रूप से संभावित और संतुलित दृष्टिकोण संभव हैं, तो एक को अनिवार्य रूप से उचित संदेह के अस्तित्व को स्वीकार करना होगा। लेकिन, काल्पनिक और दूरस्थ संभावनाओं को ध्यान में नहीं रखना चाहिए। किसी अभियुक्त व्यक्ति को दो विचारों की संभावना से उत्पन्न संदेह का लाभ दिलाने के लिए, अभियुक्त के पक्ष में संभावित दृष्टिकोण उसके विरुद्ध संभावित दृष्टिकोण के लगभग समान रूप से, यथोचित रूप से संभावित होना चाहिए। यदि संभावनाएँ पूरी तरह से एकतरफा हों, तो किसी अन्य दृष्टिकोण की मात्र संभावना भी अभियुक्त को संदेह का लाभ उठाने का हकदार नहीं बनाती। इसलिए, यह आवश्यक है कि अभियुक्त के पक्ष में साक्ष्य का कोई भी दृष्टिकोण तर्कसंगत हो, ठीक उसी

प्रकार जिस प्रकार किसी भी संदेह का, जिसका लाभ अभियुक्त व्यक्ति उठा सकता है, तर्कसंगत होना चाहिए। यह टिप्पणी की गई है कि "उचित संदेह का अर्थ कोई हल्का-फुल्का, बेबुनियाद, सारहीन संदेह नहीं है जो हममें से किसी के भी मन में कभी न कभी किसी भी बात को लेकर आ सकता है; इसका अर्थ दोषी ठहराने की अनिच्छा से उत्पन्न सहानुभूति के कारण पैदा हुआ संदेह भी नहीं है; इसका अर्थ है वास्तविक संदेह; तर्कों पर आधारित संदेह। [सैल्मंड जे. ने आर. बनाम फैटल मामले में जूरी को दिए अपने निर्देश में यह बात कही थी, जो 1959 के क्रिमिनल लॉ रिव्यू 584 में प्रकाशित हुई थी]"

{जोर दिया गया}

33. तोता सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य (1987) 2 एससीसी 529 में, न्यायालय ने निम्नलिखित शब्दों में उसी सिद्धांत को दोहराया:

"इस न्यायालय ने बार-बार यह बताया है कि केवल इस तथ्य के आधार पर कि अपीलीय न्यायालय साक्ष्यों के पुनर्मूल्यांकन पर ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए इच्छुक है जो अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश में दर्ज निष्कर्ष से भिन्न है, दोषमुक्ति को अपास्त करने का वैध और पर्याप्त आधार नहीं होगा। दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील पर विचार करते समय अपीलीय न्यायालय का क्षेत्राधिकार इस सीमा से बंधित है कि दोषमुक्ति के आदेश में तब तक कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता जब तक कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मामले में साक्ष्यों पर विचार करने का तरीका किसी स्पष्ट अवैधता से दूषित न हो या अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष ऐसा न हो जिस पर कोई भी न्यायसंगत और विवेकपूर्ण ढंग से कार्य करने वाली न्यायालय नहीं पहुंच सकती थी और इसलिए, उसे विकृत माना जा सकता है। जहां मामले में प्रस्तुत साक्ष्यों

के मूल्यांकन पर दो दृष्टिकोण संभव हों और अधीनस्थ न्यायालय ने एक तर्कसंगत दृष्टिकोण अपनाया हो, तो अपीलीय न्यायालय कानूनी रूप से दोषमुक्त करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं कर सकता, भले ही उसकी राय हो कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा साक्ष्यों पर विचार करने के बाद लिया गया दृष्टिकोण गलत है।"

{जोर दिया गया}

34. सांबासिवन और अन्य बनाम केरल राज्य (1998) 5 एससीसी 412 में न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की:

"7. दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में अपीलीय न्यायालय की शक्तियों के दायरे से संबंधित सिद्धांत सुस्थापित हैं। दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में अपीलीय न्यायालय की शक्तियाँ दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील की शक्तियों से कम नहीं हैं। लेकिन जहां अभिलेख में मौजूद साक्ष्यों के आधार पर दो दृष्टिकोण संभव हों, वहां अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायालय के दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता। अपीलीय न्यायालय केवल तभी दोषमुक्त करने के आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है जब विचारण न्यायालय द्वारा किसी अभियुक्त को दोषमुक्त करने का दृष्टिकोण अभिलेख में मौजूद साक्ष्यों पर विचार करने और उनसे निष्कर्ष निकालने में स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण पाया जाता है।"

35. भगवान सिंह और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2002) 4 एससीसी 85 में, न्यायालय ने आपराधिक न्यायशास्त्र के मूलभूत सिद्धांतों में से एक को दोहराया कि यदि मामले में प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर दो दृष्टिकोण संभव हों, एक अभियुक्त के अपराध की ओर और दूसरा उसकी निर्दोषता की ओर, तो अभियुक्त के पक्ष में अनुकूल दृष्टिकोण को अपनाया जाना चाहिए। न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"7... आपराधिक मामलों में न्याय प्रशासन के ताने-बाने में व्याप्त सुनहरा सिद्धांत यह है कि यदि मामले में प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर दो दृष्टिकोण संभव हों, एक अभियुक्त के अपराध की ओर और दूसरा उसकी निर्दोषता की ओर, तो अभियुक्त के पक्ष में अनुकूल दृष्टिकोण को अपनाया जाना चाहिए। यह अपीलीय न्यायालय पर कोई क्षेत्राधिकार प्रतिबंध नहीं है, बल्कि न्यायाधीश द्वारा विवेकपूर्ण निर्णय के लिए निर्धारित दिशानिर्देश हैं। न्यायालय का सर्वोपरि उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि न्याय का उल्लंघन न हो...."

36. *हरिजाना तिरुपाला और अन्य बनाम लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद (2002) 6 एससीसी 470* में, इस न्यायालय को एक बार फिर इस न्यायालय के कई निर्णयों द्वारा दोहराए गए कानून के स्थापित सिद्धांतों से निपटने का अवसर मिला। कई निर्णयों के बावजूद, उच्च न्यायालय निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले उन्हें ध्यान में रखने में विफल रहते हैं। न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की:

"10. आपराधिक न्याय प्रशासन की हमारी प्रणाली में ध्यान में रखे जाने वाले सिद्धांतों को इस न्यायालय के कई निर्णयों में बार-बार दोहराया गया है। फिर भी, कभी-कभी उच्च न्यायालय किसी मामले में अभियुक्त के अपराध या निर्दोषता के संबंध में निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले उन्हें ध्यान में रखने में विफल रहते हैं। यह मामला भी इसी प्रकार का एक उदाहरण है। इसलिए, स्थापित सिद्धांतों को एक बार फिर याद दिलाना आवश्यक समझा जाता है। किसी मामले का निर्णय करते समय इन सिद्धांतों को याद रखना और ध्यान में रखना वांछनीय और उपयोगी है।

11. हमारे आपराधिक न्याय प्रशासन में, किसी भी अभियुक्त को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि अभियोजन पक्ष द्वारा उसे आरोपित अपराध का दोषी साबित करने वाले साक्ष्य प्रस्तुत करके इस धारणा का खंडन न कर दिया जाए।

इसके अतिरिक्त, यदि मामले में प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर दो मत संभव हों, एक अभियुक्त के अपराध की ओर और दूसरा उसकी निर्दोषता की ओर, तो अभियुक्त के पक्ष में जो मत हो, उसे स्वीकार किया जाएगा। जिन मामलों में न्यायालय को अभियुक्त के अपराध के संबंध में उचित संदेह हो, ऐसे संदेह का लाभ अभियुक्त के पक्ष में दिया जाना चाहिए। साथ ही, न्यायालय को अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को मनगढ़ंत आधारों पर या अनुमानों के आधार पर झूठा, अविश्वसनीय या अविश्वसनीय मानकर खारिज नहीं करना चाहिए। अभियोजन पक्ष के मामले का मूल्यांकन साक्ष्यों की समग्रता को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। साक्ष्यों का मूल्यांकन करते समय न्यायालय का दृष्टिकोण एकीकृत होना चाहिए, न कि खंडित या पृथक। दूसरे शब्दों में, अभियुक्त के अपराध या निर्दोषता के संबंध में निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए, साक्ष्यों के समग्र प्रभाव को अभियोजन पक्ष के मामले या अभियुक्त की निर्दोषता पर ध्यान में रखना आवश्यक है। अभियुक्त के अपराध के संबंध में निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए, न्यायालय को साक्ष्यों का मूल्यांकन, विश्लेषण और आकलन संभावनाओं, उनके आंतरिक मूल्य और साक्षियों की मंशा के आधार पर करना होता है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि अंततः प्रत्येक मामले में निर्णय मामले के तथ्यों पर ही निर्भर करता है।

12. निःसंदेह, प्रथम अपील न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय को दोषमुक्ति या दोषसिद्धि के आदेश के विरुद्ध अपील में साक्ष्यों की समीक्षा करने और अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुँचने का पूर्ण अधिकार है। हालांकि, यह दोषमुक्ति के आदेश में हल्के ढंग से या केवल इसलिए हस्तक्षेप नहीं करेगा क्योंकि कोई अन्य दृष्टिकोण संभव है, क्योंकि दोषमुक्ति का आदेश पारित होने से अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषता की धारणा सुदृढ़ और मजबूत हो जाती है। उच्च न्यायालय को केवल

इस आधार पर दोषमुक्त करने के आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई औचित्य नहीं है कि उसे लगता है कि विचारण न्यायालय के रूप में उसने दोषसिद्धि दर्ज की होती; दोषमुक्त करने के आदेश को पलटते समय उच्च न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त करने के लिए दिए गए कारणों की जांच और चर्चा करे और फिर उन कारणों का खंडन करे। यदि उच्च न्यायालय ऐसा करने में विफल रहता है तो निर्णय गंभीर त्रुटिपूर्ण होगा।

13. यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आक्षेपित आदेश द्वारा उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित सुविचारित दोषमुक्ति के आदेश को रद्द कर दिया है। हमें प्रतीत होता है कि ऐसा करते समय उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश को पलटने के संबंध में ऊपर वर्णित स्थापित सिद्धांतों को ध्यान में नहीं रखा और यह भी कि किन परिस्थितियों में दोषमुक्ति के आदेश को पलटा जाना चाहिए।

(जोर दिया गया)

37. राजस्थान राज्य बनाम राजा राम (2003) 8 एससीसी 180 में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"15.सामान्यतः, दोषमुक्त करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि दोषमुक्त होने से अभियुक्त की निर्दोषता की धारणा और भी मजबूत हो जाती है। आपराधिक मामलों में न्याय प्रशासन के ताने-बाने में व्याप्त सुनहरा सिद्धांत यह है कि यदि मामले में प्रस्तुत साक्ष्यों पर दो दृष्टिकोण संभव हों, एक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता हो और दूसरा उसकी निर्दोषता की ओर, तो अभियुक्त के पक्ष में अनुकूल दृष्टिकोण को अपनाया जाना चाहिए। दोषमुक्ति के निर्णय के खिलाफ अपील पर विचार करते समय अपीलीय न्यायालय द्वारा पालन किया जाने वाला सिद्धांत यह है कि वह तभी हस्तक्षेप करे जब ऐसा

करने के लिए ठोस और महत्वपूर्ण कारण हों। यदि आक्षेपित निर्णय स्पष्ट रूप से अनुचित है, तो यह हस्तक्षेप करने का एक ठोस कारण है।"

38. गोवा राज्य बनाम संजय ठकरान और अन्य, (2007) 3 एससीसी 755 में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"16 दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील में शक्तियों का प्रयोग करते समय, अपील न्यायालय सामान्यतः दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगा, जब तक कि निचली न्यायालय का दृष्टिकोण किसी स्पष्ट अवैधता से दूषित न हो और जिस निष्कर्ष पर पहुंचा गया हो वह किसी भी समझदार व्यक्ति द्वारा नहीं निकाला जा सकता हो, और इसलिए, निर्णय को विकृत माना जाना चाहिए। केवल इसलिए कि दो दृष्टिकोण संभव हैं, अपील न्यायालय वह दृष्टिकोण नहीं अपनाएगा जो अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को उलट दे...."

39. चंद्रप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (2007) 4 एससीसी 415 में, इस न्यायालय ने कहा:

"(1) अपीलीय न्यायालय को उस साक्ष्य की समीक्षा, पुनर्मूल्यांकन और पुनर्विचार करने की पूरी शक्ति है जिस पर दोषमुक्त करने का आदेश आधारित है।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 ऐसी शक्ति के प्रयोग पर कोई सीमा, प्रतिबंध या शर्त नहीं लगाती है। और अपीलीय न्यायालय अपने समक्ष मौजूद साक्ष्यों के आधार पर तथ्य और विधि दोनों के प्रश्नों पर अपना निष्कर्ष निकाल सकता है।

(3) विभिन्न अभिव्यक्तियाँ, जैसे, "पर्याप्त और बाध्यकारी कारण", "अच्छे और पर्याप्त आधार", "बहुत मजबूत परिस्थितियाँ", "विकृत निष्कर्ष", "स्पष्ट त्रुटियाँ", आदि, दोषमुक्त किए जाने के विरुद्ध अपील में अपीलीय न्यायालय की व्यापक शक्तियों को सीमित करने के लिए अभिप्रेत नहीं हैं। इस प्रकार की शब्दावली,

साक्ष्य की समीक्षा करने और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर पहुँचने की न्यायालय की शक्ति को सीमित करने के बजाय, दोषमुक्त किए जाने में हस्तक्षेप करने के प्रति अपीलीय न्यायालय की अनिच्छा पर जोर देने के लिए "भाषा की अलंकरण" की प्रकृति की अधिक हैं।

(4) अपीलीय न्यायालय को यह ध्यान रखना चाहिए कि दोषमुक्त होने की स्थिति में, अभियुक्त के पक्ष में दोहरी धारणा लागू होती है। प्रथम, आपराधिक न्यायशास्त्र के मूलभूत सिद्धांत के तहत उसे निर्दोषता की धारणा प्राप्त होती है, जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक कि उसे सक्षम न्यायालय द्वारा दोषी सिद्ध न कर दिया जाए। द्वितीय, अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिए जाने के बाद, विचारण न्यायालय द्वारा उसकी निर्दोषता की धारणा को और अधिक सुदृढ़, पुष्टि और मजबूत किया जाता है।

(5) यदि अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों के आधार पर दो उचित निष्कर्ष संभव हों, तो अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए दोषमुक्ति के निर्णय को नहीं बदलना चाहिए।

40. *घुरे लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य* (2008) 10 एससीसी 450 के मामले में, इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ, जिसमें हम (न्यायमूर्ति भंडारी) भी सदस्य थे, को इस निर्णय में संदर्भित अधिकांश मामलों पर विचार करने का अवसर मिला था। प्रासंगिक निर्णयों का सर्वेक्षण करने का यह प्रयास इस आशा के साथ पुनः किया गया है कि अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायालयों द्वारा दिए गए दोषमुक्ति के निर्णयों पर विचार करते समय स्थापित कानूनी स्थिति को ध्यान में रखेंगे।

41. उपरोक्त मामलों से निम्नलिखित सिद्धांत निकलते हैं:

1. जब तक दोषी साबित न हो जाए, अभियुक्त को निर्दोष माना जाता है। जब अभियुक्त विचारण न्यायालय के समक्ष पेश हुआ था, तब भी उसे यही निर्दोष माना जाता था। विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए जाने से उसकी निर्दोषता की धारणा और भी मजबूत हो जाती है।
2. साक्ष्य की समीक्षा करने की शक्ति व्यापक है और अपीलीय न्यायालय अभिलेख में मौजूद सभी साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन कर सकता है। यह तथ्यों और कानून दोनों के संदर्भ में विचारण न्यायालय के निष्कर्ष की समीक्षा कर सकता है, लेकिन अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय के निर्णय को उचित महत्व और विचार देना चाहिए।
3. अपीलीय न्यायालय को हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि विचारण न्यायालय को साक्षियों के व्यवहार को देखने का स्पष्ट लाभ प्राप्त था। विचारण न्यायालय साक्षियों की विश्वसनीयता का बेहतर मूल्यांकन कर सकती है।
4. अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायालय के दोषमुक्त करने के निर्णय को केवल तभी रद्द कर सकता है या उसमें कोई अन्य बदलाव कर सकता है जब उसके पास ऐसा करने के लिए "बहुत ठोस और बाध्यकारी कारण" हों।
5. यदि दो तर्कसंगत या संभावित दृष्टिकोणों पर सहमति बन सकती है - एक जो दोषमुक्त होने की ओर ले जाता है, दूसरा जो दोषसिद्धि की ओर ले जाता है - तो उच्च न्यायालयों/अपीलीय न्यायालयों को अभियुक्त के पक्ष में निर्णय सुनाना चाहिए।

42. हमने अभिलेख पर मौजूद सभी साक्ष्यों और दस्तावेजों पर विचार किया है और विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त करने के लिए दिए गए तर्क और साथ ही उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्त करने के निर्णय को पलटने के लिए दिए गए तर्क पर भी विचार किया है।

43. सभी साक्ष्यों और अभिलेख में मौजूद दस्तावेजों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने पर, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण निश्चित रूप से एक संभावित या तर्कसंगत दृष्टिकोण है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, स्थापित कानूनी स्थिति यह है कि यदि विचारण न्यायालय का दृष्टिकोण संभव या तर्कसंगत है, तो उच्च न्यायालय को अपना स्वयं का संभावित दृष्टिकोण उस पर लागू नहीं करना चाहिए। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय में विचारण न्यायालय के सुविचारित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करना उचित नहीं था।

44. परिणामस्वरूप, अपीलकर्ता द्वारा दायर की गई यह अपील स्वीकार की जाती है और इसका निपटारा किया जाता है तथा उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय निरस्त किया जाता है।

एन.जे.

अपील की अनुमति दी गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।